धर्मोंपाख्यान

सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी ।

धर्मोपाख्यान

लेखक

(धनमऊ, ज़िला मैनपुरी-निवासी)

सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

प्रथमवार] सन १९१६ [मूल्य ।)

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the
Indian Press, Allahabad.

वक्तव्य ।

यों तो महाभारत के समस्त पर्व विज्ञानों के भाण्डार हैं हीं; किन्तु उनमें शान्तिपर्व सब से बढ़ कर है। इस पर्व में मनुष्य के कल्याण के लिए विशद रूप से वर्णन किया गया है। उसी शान्तिपर्व से हमने यह छोटी सी पुस्तक 'धर्मोपाख्यान' तैयार की है। इसमें किया गया धर्म-विषयक वर्णन मनुष्य को सच्चा सुख देने वाला है। आशा है पाठकों को धर्म-विषय में इससे बहुत सहायता मिलेगी।

१९६६ प्रयाग | सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी

धर्मोपाख्यान।

पहला परिच्छेद।

एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर जी महाराज भीष्मपितामह जी से पूछने लगे कि हे पितामह! संसार में मैं देख रहा हूँ कि सब जाति के लोग धर्म के विषय में शंका किया करते हैं—वे जानना चाहते हैं कि धर्म क्या चीज़ है? धर्म का नाम धर्म क्यों रक्खा गया? क्या कारण है जिससे सब लोग उसे धर्म कहते हैं? आप से यह मेरा प्रश्न है। कृपा करके उसका ऐसा उत्तर दीजिए जिससे समझ में आ जाय। आप समझाते हुए हमारी बात का जवाब दीजिए। दूसरी बात यह कि आप हमारी बात का जो उत्तर देंगे अर्थात् आप जो धर्म बतलायेंगे उसके विषय में आप यह भी मुझे समझा कर बतलाइएगा कि वह धर्म मनुष्य के लिए इस लोक में कल्याणकारी है या परलोक में भी; अथवा दोनों लोकों में?

राजा युधिष्ठिर के प्रश्न को अच्छी तरह समझ कर भीष्मपितामह ने उत्तर दिया कि विद्वान् तीन तरह से धर्म का लक्षण बतलाते हैं। १—अच्छे मनुष्यों का आचार, जिसको

सदाचार भी कहते हैं, २—मनुस्मृति आदि धर्म-शास्त्र और ३—वेद । मुख्य ये ही तीन धर्म के लक्षण हैं । इन्हीं तीनों की सहायता से मनुष्य धर्म करके धर्मात्मा कहला सकता है । चौथा धर्म का लक्षण धन भी है । धन की सहायता से भी मनुष्य धर्म कर सकते हैं ।

देखिए, धन को भी धर्म का लक्षण बतलाया गया है । पर उसका दरजा आख़िरी है । धर्म के अनुसार धन को इकट्ठा करने पर भी वह आख़िरी दरजे पर रक्खा गया । बात यह कि धन से अनेक धर्म-कार्य होते हैं, किन्तु कभी कभी ऐसा भी होता है कि धन के न रहने से धर्म-कार्य में बाधा पड़ जाती है । पर ऐसा होने पर भी धर्म के लक्षणों में उसका सब से आख़िरी दरजा रक्खा गया । प्रधान नहीं ।

आज तक जितने धर्म-परीक्षक हुए, उन सब की यही राय है कि वेदादि सत्य शास्त्रों में जो धर्मयुक्त काम बतलाये गये हैं उनका झुकाव परमार्थ की ओर है । धर्म करने वाले को मोक्ष-प्राप्ति होती है । और, संसार में लोकनिर्वाह के लिए धर्म करने का नियम बांधा गया है । यदि मनुष्य धर्मानुसार बर्ताव न करे तो उसका काम चलना कठिन हो जाय । बिना धर्म का सहारा लिये जो व्यवहार करते हैं उनको थोड़ी थोड़ी देर में ठोकरें खानी पड़ती हैं । इसलिए जो संसार में अच्छी तरह निर्वाह करना चाहे उसे धर्म ज़रूर करना चाहिए ।

धर्म मनुष्य को, इस लोक और परलोक दोनों में सुख देने वाला है । ऐसे सामर्थ्यवान धर्म को जिसने न पाया, जिसने

धर्म का सहारा न लिया, वह मनुष्य पापी कहलाता है। उस को चारों ओर से पाप आकर घेर लेते हैं।

जब मनुष्य के ऊपर किसी तरह की आपत्ति आती है तब पापी मनुष्य पाप के फल से कभी नहीं बच सकता। उसको अपने पाप का फल ज़रूर भोगना पड़ता है। आपत्ति के समय एक मात्र सहारा देने वाला धर्म है।

जब मनुष्य पाप-वासनायें छोड़ देता है तभी धर्म के स्वरूप को जान सकता है। जब तक मनुष्य को पापवृत्तियाँ घेरे रहती हैं तब तक वह धर्म-मार्ग को किसी तरह नहीं जान सकता। धर्म का स्थान सदाचार है। सदाचार धर्म जानने में सहायक होता है। तुम सदाचार का सहारा लो। तुम उसका सहारा लिये हुए धर्म को जान सकोगे। यदि बिना सदाचार को काम में लाये धर्म का मर्म जानना चाहोगे तो उसका जानना या समझना अत्यन्त दुःसाध्य है।

चोरी करने वाले मनुष्य में धर्म नहीं होता। वह दूसरे के धन को चुरा लेता है और चोरी करते समय बड़ा ख़ुश होता है। वह इस बात की पर्वा नहीं करता कि जब मेरी कलई खुल जायगी तब क्या सज़ा भोगनी पड़ेगी। वह चोरी करते समय अपने शासक राजा का ख़याल तक नहीं करता; डरने की तो बात ही दूर है। पर, जब, चोरी करने वाले चोर के धन को कोई दूसरा चोर चुरा लेता है तब वह अपने शासक का शरण लेता है। उस समय वह चाहता है कि राजदर्बार में मेरा न्याय किया जाय। जो मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार पाये हुए धन से

सन्तुष्ट होते हैं उनके समान होने की वह उस समय इच्छा किया करता है ।

जो मनुष्य चोर नहीं, जो सब तरह के दोषों से रहित शुद्धात्मा है, वह निर्भय होता है। उसको किसी से किसी तरह का डर नहीं लगता। वह निडर हुआ राजदरबार में चला जाता है और अपने मन में कुछ भी पाप नहीं समझता।

सत्य बोलना बहुत अच्छा है। जो सत्यवादी होता है वह सुखी रहता है। सत्य से बढ़ कर कोई दूसरी चीज़ नहीं। सत्य ही ने सारे संसार को धारण कर रक्खा है। सब कुछ सत्य ही में ठहरा हुआ है।

हिंसा करने वाले और कठोर बोलने वाले पापी मनुष्य भी जब झूठ को सच से अच्छी तरह अलग जान लेते हैं तब वे सच के सहारे धर्म करने लगते हैं। वे दूसरों से दुश्मनी करना और झगड़ा बखेड़ा करना आदि बुराइयों को छोड़ देते हैं। यदि वे उस समय परस्पर की हुई प्रतिज्ञा का त्याग करें, धीरजरूपी धर्म को छोड़ दें तो ज़रूर परस्पर नष्ट हो जावें। वे उस समय धीरज ज़रूर बनाये रखते हैं। यदि ऐसा न करें तो उनका रहना ही कठिन हो जाय।

किसी का धन नहीं चुराना चाहिए—यह सनातन धर्म है। जो बलवान् होते हैं या जो पापी होते हैं, जैसे डाकू, चोर, उचक्के आदि; वे धर्म को कमज़ोर मनुष्यों का कहा हुआ मानते हैं। वे कहा करते हैं कि धर्म करना या धर्म का सहारा लेना कमज़ोर मनुष्यों का काम है और उन्हीं ने धर्म को बतलाया है। वे ही धर्मानुसार चलने के लिए कहते हैं।

जो ज़ोरावर होते हैं उनको भाग्य या प्रारब्ध अच्छा नहीं लगता। वे भाग्य की निर्बलता को अधिक चाहते हैं। वे कहते हैं कि हमें भाग्य से क्या लेना है। इससे वे मनुष्य न तो बलवान् ही बने रहते और न बहुत सुखी ही होते हैं।

तुमको चाहिए कि दूसरे का माल लेने की कभी इच्छा मत करो। अपनी बुद्धि को ऐसा बनाये रहो कि उसमें नास्तिकता और कठोरता का प्रवेश न होने पावे। जो दूसरे का माल लेने की इच्छा करता है और जो दूसरों के साथ कठोर व्यवहार करता है उसमें नास्तिकपन ज़रूर आ जाता है। इसलिए उससे बचना चाहिए।

जो कभी रिश्वत नहीं लेता, या छल और प्रपंच करके दूसरे का धन छीनना नहीं चाहता, उसका हृदय बलिष्ठ होता है। वह अपने मन में सदा उच्च भावों का ख़याल रखता है, इससे वह बुरे मनुष्यों से और चोर आदि से बिल्कुल नहीं डरता। निडर होकर वह अपना अच्छी तरह गुज़ारा करता है। जो कभी किसी को हानि नहीं पहुँचाता—किसी को सताता नहीं—वह शुद्ध है, वह निडर होता है और धर्मात्मा कहलाता है।

चोर जब चोरी करने निकलता है तब वह इस तरह डरता है जिस तरह जंगली हिरन किसी गाँव में भूल से आजाने पर डरा करता है। चोर चारों ओर देखा करता है कि मुझे कोई देख न ले। चोर जब चोरी कर लेता है तब वह अपने किये हुए पाप को प्रायः दूसरों में अपनी तरह देखा करता है। जहाँ कहीं दो चार मनुष्यों को बातें करते देखता है वहाँ वह यही समझने लगता है कि ये लोग मेरे गुप्त हाल को ही सोचते होंगे। चोर

को किसी समय शान्ति नहीं मिलती। वह अपने मन में सदा डरता रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि मेरा हाल दूसरे को मालूम हो जाय और मेरी सारी कलई खुल जाय।

जो चोरी नहीं करता, जो किसी को किसी तरह से सताता नहीं वह निर्दोष है और शुद्ध है। वह सदा निडर होकर राज-दरबार में चला जाता है: और अपने पाप को दूसरों में कभी नहीं देखता कि मेरे पाप को कोई जानता होगा या जान लेगा। जब वह पापकर्मों से दूर है तब उसे ऐसी शंकाही क्यों हो सकती है। वह तो निर्द्वंद्व हुआ आनन्दपूर्वक विचरता है।

जो दूसरों की भलाई चाहते थे—जो दूसरों का उपकार करना चाहते थे—उन्होंने दान करना धर्म बतलाया है। परन्तु धनी मनुष्य कहते हैं कि दान-धर्म को ग़रीबों ने चलाया है। ग़रीबों को दूसरों से कुछ लेने की ज़रूरत हुआ करती है इससे उन लोगों ने दान को धर्म-कार्यों में शामिल कर दिया।

अपने पास धन होने पर यदि स्वभाव में कृपणता है तो धन होने पर भी उस धनी को अपने धन से किसी तरह का सुख नहीं मिल सकता। जो कंजूस होता है उसे सन्तोष कहां। और सन्तोष के बिना कभी किसी को सुख नहीं। ऐसे मनुष्य अथाह तृष्णारूपी सागर में ग़ोता खाया करते हैं। जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है उसे धनी नहीं किन्तु दरिद्र कहना चाहिए।

जो काम अपने लिए अप्रिय है वही काम दूसरे को भी अप्रिय लगेगा। दूसरे मनुष्य के किये हुए जिस काम को हम अपने लिए बुरा समझते हैं वही काम दूसरे को भी बुरा लगेगा।

इसलिए हमको भी वह काम दूसरे के लिए कभी न करना चाहिए। जो मनुष्य दूसरे मनुष्य की स्त्री को बुरी नज़र से देखता है वह अपनी स्त्री को बुरी नज़र से देखने वाले को क्या कह सकता है। यदि वह उससे कुछ कहेगा तो वह क्यों सहेगा। जो बात अपने लिए बुरी है वही बात दूसरे के लिए भी बुरी है। यह सदा ख़याल रखना चाहिए।

जो यह चाहता है कि मैं बहुत दिन तक जीवित रहूँ उसको चाहिए कि वह किसी प्राणी को न कभी खुद मारे और न दूसरे मनुष्य को मारने की आज्ञा दे। इसी तरह जो अपने लिए जिस जिस बात को अच्छी समझ कर चाहता हो उसे वही बात दूसरे के लिए भी अच्छी समझनी चाहिए। दूसरे के हित के लिए भी उसे वैसाही करना चाहिए।

यदि किसी के पास सांसारिक भोग अधिक बढ़ जावें तो उसको चाहिए कि वह उन भोगों से ग़रीब मनुष्यों का पालन करे। इसी लिए ब्रह्मा ने व्याज की रीति चलाई थी कि असली धन पर जो व्याज बढ़े उससे दीन-दुखियों का पालन-पोषण किया जाय। व्याज की वृद्धि होने पर धनी मनुष्य को यह न करना चाहिए कि उससे अपने धन की ही वृद्धि करता रहे; किन्तु उससे ग़रीबों का पालन करना चाहिए।

जो मार्ग या मर्यादा विद्वानों की है, वे जिस तरीक़े से संसार में अपना बर्ताव करते हों उसी तरह, सब का कर्तव्य होना चाहिए कि वे भी उसी तरह बर्त्ताव करें। एक जगह उपनिषद् में भी ऐसा ही कहा गया है कि 'महाजनो येन गतः

स पन्थाः' अर्थात् विद्वान् जिस मार्ग पर चलते हों उसी मार्ग का अनुसरण सब को करना चाहिए। यदि कोई हर समय धर्म का ख़याल न रख सके तो उसे वृद्धि के या लाभ के समय तो ज़रूर ही धर्म का ख़याल करना चाहिए। वृद्धि के समय धर्म में यदि स्थिर रहेगा तो भी अच्छा ही है।

हे युधिष्ठिर! जो चतुर हैं, विद्वान हैं, वे कहा करते हैं कि हमारे आत्मा को जो प्रिय है—हमको जो अच्छा लगता है—हमारा आत्मा जिसे स्वीकृत कर लेता है—वही धर्म है। हमने जो धर्म और अधर्म के विषय में कहा उसको तुम सोचो और समझो। हमने यह धर्माधर्म का लक्षण ऐसा बतला दिया है जो सर्व-व्याप्त धर्म का लक्षण है। हमने जो कुछ कहा है उसी का विधान पहले ब्रह्मा ने किया है। हमारा कथन लोक-व्यवहार के अनुकूल, सूक्ष्म धर्म और अर्थ का साथी है। अच्छे मनुष्यों ने उसकी सेवा की है। वह धर्म का सब से बढ़ कर लक्षण है। तुमको मैंने धर्म का सारभूत लक्षण बतला दिया। अब तुमको चाहिए कि तुम अपनी बुद्धि को कभी चलायमान मत होने देना। तुम्हारी बुद्धि नास्तिकता की ओर न जाय और न उसमें कभी कठोरता आवे, इसका ख़याल रखना।

संसार में रह कर अच्छी तरह निर्वाह करने के लिए मनुष्य के वास्ते भीष्मपितामह का यह धर्म का लक्षण बड़ा हितकर है। इसके अनुसार बर्त्ताव करने से मनुष्य को किसी तरह का कष्ट नहीं हो सकता। जो मनुष्य इसके अनुसार अपने को बना लेगा उसका सब लोग साथ देंगे और उसे अपना समझने लगेंगे।

दूसरा परिच्छेद ।

भीष्मजी जब धर्म का लक्षण कह चुके तब धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—आपने जो धर्म का लक्षण बतलाया वह बहुत सूक्ष्म, बहुत अच्छा और निश्चय किया हुआ है। परन्तु मेरा एक विशेष विचार है; उसे मैं अनुमान-प्रमाणपूर्वक कहूँगा। मेरे मन में बहुत से प्रश्न पैदा हुए थे उन सब का आपने उत्तर दे दिया। हे राजन्! मैं और कुछ कहना चाहता हूँ। आपके कथन में मुझे किसी तरह का हठ या दुराग्रह नहीं है; किन्तु मुख्य प्रयोजन पूछना ही है। मैं जो कहना चाहता हूँ उसे आप सुनिए।

हे पितामह! संसार में मनुष्य को कर्म ही जिलाते, कर्म ही पैदा करते और कर्म ही दुःखों से पार करते हैं! जो कुछ संसार-चक्र चल रहा है, प्राणी जिस जिस दशा में जिस जिस तरह से रहता है—यह सब कर्म का ही चक्र है। इसलिए धर्म के दो चार लक्षण गिना देने से धर्म का तत्त्व नहीं जाना जा सकता। मैं देखता हूँ कि जो मनुष्य अच्छी दशा में है उसका धर्म और है, और जो बुरी दशा को प्राप्त है उसका दूसरा ही है। ऐसी दशा में आपने जितना धर्म का लक्षण बतलाया, उससे काम नहीं

चल सकता । और भी अधिक उसे बतलाने की ज़रूरत है । साथ ही कृपा करके यह भी बतलाइएगा कि प्राणी पर जो रात दिन अनेक तरह की आपत्तियाँ आया करती हैं उनकी गिनती किस तरह हो सकती है ?

सदाचार धर्म का लक्षण माना गया है और जो मनुष्य शुद्ध आचरण का सेवन करते हैं उनको सत्पुरुष कहते हैं, इसलिए लक्ष्य और लक्षण के अन्योन्याश्रय दोष से सदाचार को धर्म लक्षण रूप से किस तरह स्वीकार किया जाय । बात यह कि इस तरह साध्य और असाध्य कर्म कुछ नहीं जाना जा सकता । क्योंकि सदाचार का लक्षण कोई नहीं है । संसार में रात दिन देखा जाता है कि कोई कोई मूर्ख धर्म का बहाना करके अधर्म करते हैं और कोई कोई बुद्धिमान् अधर्मरूप से धर्म करते हुए देखे जाते हैं । इसलिए यह निश्चय कर देना कि इस तरह के कर्तव्य का नाम धर्म है, सो ठीक नहीं । दूसरी बात यह कि शास्त्रों के जानने वालों ने धर्म का निश्चय करने के लिए प्रमाण भी बतलाये हैं । और हमने यह भी सुना है कि हर एक युग में धीरे धीरे वैदिक सिद्धान्तों की कमी होती जाती है । मनुष्यों की बुद्धि हमेशा पलटा खाया करती है । उनकी बुद्धि के अनुसार ही वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार होता है । यह बात नहीं कि मनुष्यों की बुद्धि सदा एक सी रहती हो और वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार भी सदा एकसा रहता हो । काल और बुद्धि के भेद से उनमें हमेशा उलट फेर होती रहती है ।

संसार का प्रवाह जिस तरह का चल पड़ता है उसी तरह

का धर्मकार्यों में परिवर्तन हो जाता है। मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार धर्म किया करते हैं। सत्ययुग में जिन धर्मों को किया जाता है वे त्रेता में नहीं; त्रेता में दूसरे ही धर्म हैं; द्वापर में और ही धर्मों का बर्ताव किया जाता है तथा कलियुग में कोई दूसरे ही धर्म बर्ते जाते हैं। बात यह कि धर्म की मर्यादा सदा एक सी नहीं रहती। किन्तु काल और मनुष्यों की बुद्धि के भेद से उसमें हमेशा परिवर्तन होता रहता है।

विद्वानों की राय है कि वेदवचन सत्य है—वेदों के मूल मन्त्रों को सब विद्वान् सर्वथा सत्य मानते हैं। इसके बाद वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या करनेवाले ब्राह्मण आदि ग्रन्थ भी वेदों के तुल्य होने से लोग उनको वेद मानने लगे और उनका अच्छी तरह प्रचार भी हुआ। यदि वेद आदि प्रमाणरूप हैं तो धर्म का निश्चय करने के लिए प्रमाण वर्तमान है। यदि अप्रमाण से प्रमाण विरुद्ध हो जाय तो प्रमाण-शास्त्र का शास्त्रपन ही नहीं रहता।

बुरे मनुष्य जिस धर्म का बर्ताव करने लगते हैं वे उसको बिगाड़ कर अधर्म बना डालते हैं। पहले तो वे धर्म के पास फटकते ही नहीं। अगर किसी तरह उन्होंने धर्म में रुचि की तो उसे ऐसी बुरी तरह से करते हैं जिससे उसका धर्मपन ही नष्ट हो जाता है।

हम धर्म को जानते हैं या नहीं। हम उसे जान भी सकते हैं या नहीं—इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ हम यह ज़रूर जानते और कह भी सकते हैं कि धर्म छुरे की धार

से भी बहुत सूक्ष्म है और पहाड़ से भी बहुत बड़ा है। अर्थात् उसे बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा कह सकते हैं।

धर्म पहले तो गन्धर्व नगर की तरह बड़ा दिखलाई देता है। पर जब जिज्ञासु उसकी छान बीन करने लगते हैं तब वह अनेक टुकड़ों में हो जाने से कुछ भी दिखलाई नहीं देता।

जिस तरह गायों के पानी पीने के लिए प्याऊ और खेत सींचने के लिए नाली हितकर हैं उसी तरह हे भारत! धर्म जानने के लिए मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र हैं। धर्म-शास्त्रों की सहायता से जिस धर्म का निश्चय किया जाता है उसमें किसी तरह से हीनता नहीं होती। वह कभी नष्ट नहीं हो सकता।

संसार में देखा जाता है कि बहुत से मनुष्य काम से, दूसरों को ढोंग दिखा कर राज़ी करने के लिए या दूसरे कारणों से धर्म करने का सा बर्ताव करने लगते हैं। ज़ाहिरा ऐसा मालूम होता है कि वे धर्म कर रहे हैं। पर असल में वे धर्म-कार्य नहीं करते किन्तु देखने वालों को धोका देते हैं। ऐसे मनुष्यों को विज्ञ मनुष्य धर्मात्मा नहीं कह सकते। हाँ, कोई कोई ऐसे भी मूर्ख होते हैं जो धोकेबाज़ों के धोके में आ जाते हैं और असलियत को न समझ सकने से वे उनके करतब को धर्म समझने लगते हैं और सच्चे धर्मात्मा मनुष्य की बुराई करने लगते हैं। पर एक बात है कि जब तक वे असलियत न जानेंगे तभी तक वे ऐसा करेंगे। जब असली बात उनकी समझ में आ जायगी तब वे धर्म को धर्म और अधर्म को अधर्म मानने लगेंगे। उस समय धोकेबाज़ों की पोल खुल जायगी।

बहुत से लोग उलटे को सीधा और सीधे को उलटा समझने लगे, इस कारण विचारशील मनुष्य अपना धर्म छोड़कर राजधर्म का सहारा लेने लगे। ऐसा सदाचार प्रवृत्त नहीं हो सकता जो सब के लिए एकसा हितकर हो। पहले सदाचार से दूसरे सदाचार की उत्पत्ति होती है और वह दूसरे को हानि पहुँचाता है। थोड़ी देर में अकस्मात वे दोनों एक रूप दिखलाई पड़ते हैं। जिस सदाचार से दूसरा सदाचार पैदा होता है वह दूसरे को हानि पहुँचाता है इसलिए सदाचारों की स्थिरता नहीं समझनी चाहिए। पुराने ज़माने से विद्वान् जिस धर्म का सेवन करते आये हैं वही धर्म समझना चाहिए। उनके चलाये हुए मार्ग पर चल कर सदाचार को काम में लाना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को सदा सुख मिलेगा।

तीसरा परिच्छेद।

जब युधिष्ठिरजी अपना कथन पूरा कर चुके तब भीष्मपितामह कहने लगे कि धर्म के विषय में हम तुमको एक पुराना इतिहास सुनाते हैं। इस इतिहास को हमने पण्डितों को कहते हुए सुना है। वह इतिहास ऋषि जाजलि और तुलाधार नामक दो मनुष्यों का है। उसे सुनो। वह इस तरह है।

जाजलि बड़ा तपस्वी था। वह सदा जंगल में घूमता फिरता रहा करता था। एक बार वह समुद्र के किनारे पहुँच कर तप करने लगा। उस अवस्था में उसने मृग-चर्म के सिवा और कुछ अपने पास न रक्खा। जटा रखाये हुए, मल और कीचड़ से सने हुए उस महात्मा ने अपना भोजन भी नियत कर लिया और जितेन्द्रिय होकर तप करने लगा।

हे युधिष्ठिर! एक बार जल में रहनेवाले मन की तरह जल्दी चलनेवाले महात्मा जाजलि ने लोकों को देखते हुए ख़ूब भ्रमण किया। वह एक दिन पृथिवी को देख कर सोचने लगा कि जो पृथिवी समुद्र पर्यन्त है और जिसमें अनेक छोटे बड़े वन हैं उसको मैंने ख़ूब देखा; लेकिन जड़ और चेतन—दोनों—में मेरे

समान इस पृथिवी पर ऐसा कोई नहीं है जो मेरे साथ जल में आकाश-मार्ग से चल सके।

जाजलि यह बात जल के भीतर से कह रहा था। इसलिए वह उस समय किसी को दिखलाई न देता था। वह अदृश्य था तो भी पिशाचों ने उसकी बात सुन कर कहा कि हे जाजलि! तुमको इस तरह नहीं कहना चाहिए। देखो, काशी में एक तुलाधार रहता है, वह बड़ा यशस्वी है। वह वैश्यवृत्ति करता है। पर उसकी प्रसिद्धि इतनी है जिसका कुछ ठीक नहीं। इतने पर भी वह इस तरह कभी नहीं कह सकता जिस तरह महात्मा होकर तुमने इस समय कहा है।

जब राक्षसों ने जाजलि से इस तरह कहा तब वह कहने लगा कि मैं भी यशस्वी बुद्धिमान् तुलाधार को देखना चाहता हूँ। उस समय राक्षसों ने उसे समुद्र से निकाल लिया और कह दिया कि हे विद्वन्! तुम इस रास्ते से तुलाधार के पास चले जाओ।

राक्षसों के बतलाये हुए रास्ते से उदास होकर जाजलि बनारस को चल दिया और वहाँ पहुँचने पर तुलाधार से चौथे परिच्छेद में बतलाई हुई बातें हुईं।

युधिष्ठिरजी ने पूछा—हे पितामह! जाजलि मुनि ने पहले कौन से कठिन काम किये थे जिनसे वह सब से बढ़ कर सिद्धि पा गया। आप मुझे समझा कर बतलाइए।

भीष्मजी ने उत्तर दिया—जाजलि महात्मा ने घोर तप किया था। वह सबेरे और शाम को शौचादि से निवृत्त होकर

परमात्मा का भजन किया करता था । वह स्वाध्याय में रत हुआ नियमपूर्वक अग्निहोत्र आदि करता था । उसने ऐसा तप किया कि जिसके प्रभाव से वह देदीप्यमान दीखने लगा ।

जाजलि मुनि ने जिस समय तप करना शुरू किया उस समय उसने अपने शरीर की रक्षा का कुछ भी ख़याल नहीं किया । वन में रह कर वर्षा के समय वह खुले मैदान में तप करता था और सरदी के वक़्त जल में रह कर ब्रह्म-विद्या का विचार किया करता था । गरमी के समय गरम गरम हवा और धूप का सहन किया । उसे यह कभी ख़याल नहीं हुआ कि हम ऐसी चीज़ों का सेवन करें जिससे हमारे शरीर को सुख पहुँचे । वह सदा ज़मीन पर सोता था । ज़मीन पर सोने से शरीर को तकलीफ़ मालूम होती है । पर जाजलि महात्मा ने कुछ तकलीफ़ न मानी ।

कभी कभी जाजलि मुनि अपने तप के प्रभाव से आकाश को उड़ जाता था और ऊपर से बरसती हुई वर्षा की घनघोर वृष्टि को अपने सिर पर लिया करता था । हे राजन् ! बार बार सिर के ऊपर पानी पड़ने से उसके सिर की जटायें भीग कर आपस में गुथ गई थीं और जंगल में निरन्तर घूमते फिरते रहने से उसका शरीर मैला हो गया था । पर अपने तप के आगे उसने इन बातों की कभी पर्वा नहीं की ।

कभी कभी जाजलि महात्मा ने कुछ भी खाने की चीज़ न खाई । निराहार रह कर वायु का ही भक्षण किया । कभी कभी ऐसा भी होता था कि वह काठ की तरह पड़ा रहता था और

कहीं आता जाता न था। हे राजन्! एक बार वह यहाँ तक चेष्टाहीन हो गया—यहाँ तक बेसुध की तरह पड़ा रहा कि उसके सिर में कुलिङ्ग नामक पक्षियों के जोड़े ने अपने रहने के लिए एक घोंसला बना लिया। उस समय वह यह ज़रूर देखा करता था कि पक्षी छोटे छोटे तिनके लाकर उसके सिर की जटाओं में एक घोंसला बना रहे हैं। जब जाजलि लकड़ी की तरह बहुत दिन तक पड़ा रहा तब उन पक्षियों को विश्वास हो गया कि यह कोई स्थिर चीज़ है और वे अपने बनाये हुए घोंसले में सुख-पूर्वक रहने लगे।

जब वर्षा ऋतु ख़तम हो गई और सरदी पड़ने लगी तब स्वाभाविक सृष्टि-नियम के अनुसार वे दोनों पक्षी सृष्टि रचने की फ़िक्र करने लगे। थोड़े दिन के बाद उन पक्षियों ने जाजलि के सिर पर अण्डे रख दिये। अण्डे रखने के समय उसने यह अच्छी तरह जान लिया कि मेरे सिर पर पक्षियों ने अण्डे रक्खे हैं। अण्डों का रक्खा जाना जान कर वह ज़रा भी न हिला। क्योंकि उसका झुकाव सदा धर्म की ओर रहता था। वह जानता था कि अगर मैंने अपना सिर हिलाया तो सिर से अण्डे गिर पड़ेंगे और टूट जायँगे। अण्डों के टूट जाने से बड़ा अधर्म होगा।

कुलिङ्ग पक्षी रोज़ दिन में बार बार वहाँ से बाहर चले जाते और चुग्गा खाकर अपना पेट भर के उसके सिर पर आकर बैठ जाते थे। पक्षियों को जाजलि की स्थिरता का ठीक उसी तरह विश्वास था जिस तरह पक्षियों को पेड़ का होता है। जिस तरह वे पेड़ पर विश्वास-पूर्वक रहते हैं उसी तरह जाज़लि के

सिर की जटाओं पर वे दोनों पक्षी रहते थे। धीरे धीरे थोड़े दिन के बाद उन पक्षियों के रक्खे हुए अण्डों से बच्चे निकल आये और वहीं सिर पर परवरिश पाते हुए बढ़ने लगे। पर जाजलि ने अपना सिर फिर भी न हिलाया। यही नहीं किन्तु उसे इस बात का बड़ा ख़याल था कि पक्षियों के बच्चों की रक्षा रहे। उन्हें किसी तरह का कष्ट न हो।

थोड़े दिन के बाद पक्षियों के बच्चों के पर निकल आये। जाजलि ने भी जान लिया कि अब बच्चों के पर निकल आये हैं। एक दिन वह उन बच्चों को पंखयुक्त देख कर बड़ा ख़ुश हुआ। उसी तरह दोनों पक्षियों को भी अपने बच्चों को बढ़ा हुआ देख कर बड़ी ख़ुशी हुई। वे अपने बच्चों के साथ वहीं जाजलि के सिर की जटा में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

पक्षियों के बच्चे रोज़ सवेरे अपने आहार के लिए उड़ जाते और आहार करके शाम को वहीं आ जाते थे। यह बात जाजलि मुनि रोज़ देखा करता था। कभी कभी बच्चे बहुत समय के लिए उड़ जाते थे। कुछ दिन के बाद उन बच्चों के मा-बाप ने भी उन्हें छोड़ दिया। कभी कभी वे पक्षी पांच पांच छः छः दिन के लिए वहां से उड़ गये। पर, जब लौटे तब जाजलि को उसी तरह स्थिर पाया और वहीं रहने लगे। धीरे धीरे वे बच्चे ऐसे समर्थ हो गये कि एक बार वहाँ से उड़ कर कहीं चले गये और एक महीने तक वहां लौट कर न आये। जब जाजलि को विश्वास हो गया कि पक्षी अब सब तरह समर्थ हो गये हैं तब वह वहाँ से उठ कर चल दिया।

पक्षियों के उड़ जाने के बाद महात्मा जाजलि को बड़ा आनन्द और आश्चर्य हुआ। 'मैं सिद्ध हो गया' इस तरह मान कर उसको अभिमान ने घेर लिया। वह ऐसा घमंडी बन गया कि वह दूसरों से सत्कार कराने के योग्य अपने को समझने लगा। उस तपस्वी ने नदी में नहा कर और हवन करके सूर्य के निकलने पर उसका उपस्थान किया और फिर वह अपने को सिद्ध समझने लगा।

एक दिन क्या हुआ कि पक्षियों के पालन-पोषण करने का उसको ख़याल हो आया कि ओ हो! मैं तो सबसे बढ़ कर तपस्वी हो गया। वह आकाश में बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहने लगा कि मुझे धर्म की प्राप्ति हो गई। वह अभीष्ट-सिद्धि पाई हुई जान कर बड़ा ख़ुश होता था।

जब वह गरज कर अपने को सिद्ध बतलाने लगा तब एक आकाशवाणी हुई। उसे उसने अच्छी तरह सुना। वह आकाशवाणी यह थी कि हे मुने! तुम तुलाधार के समान धर्म के ज्ञाता नहीं हो। काशी में एक तुलाधार नामक मनुष्य रहता है। वह बड़ा बुद्धिमान्, धर्मात्मा और प्रतिष्ठित मनुष्य है। वह भी इस तरह कभी नहीं कह सकता जैसा धर्म-विषय में तुमने अपने लिए कहा है।

हे राजन्! आकाशवाणी सुन कर जाजलि को बड़ा क्रोध आया। उसने उसी समय निश्चय कर लिया कि मैं तुलाधार से ज़रूर मिलूँगा। मैं देखूँगा कि तुलाधार कैसा धर्मात्मा है—यह निश्चय करके वह वहाँ से चल दिया। मार्ग में चलते चलते

जब जहाँ रात हो जाती तब वहीं वह ठहर जाता और सबेरा होते ही फिर चल देता। इस तरह तुलाधार से मिलने की इच्छा से पृथिवी पर घूमता घामता वह बहुत दिन के बाद काशी पहुँचा। वहाँ उसने तुलाधार को अनेक चीज़ें बेचते हुए देखा।

तुलाधार दूकान का काम किया करता था। वही उसकी जीविका थी। अपने पास जाजलि को आया हुआ देख कर तुलाधार को बड़ी ख़ुशी हुई। उसने उसका स्वागत करके अच्छी तरह आदर सत्कार किया।

तुलाधार ज्ञानी था। ज्ञानी मनुष्यों को परोक्ष विषय का अच्छी तरह ज्ञान हो ही जाता है। आदर-सत्कार करके तुलाधार कहने लगा कि आप यहाँ आने वाले हैं—यह मुझे पहले से ही मालूम हो गया था। अब मैं जो कुछ आपसे कहना चाहता हूँ उसे अच्छी तरह सुनिए:—

हे महात्मन्! आपने समुद्र के किनारे जल में रह कर ख़ूब तपस्या की है। इस समय आप धर्म को जानने वाले और तपस्वी हैं। पर एक बात है, वह यह कि इससे पहले आप धर्म का नाम भी न जानते थे। मैं धार्मिक हूँ—आपको ऐसा ज्ञान न था। जब आपने तप किया और उसके प्रभाव से आप सिद्ध हुए तब आपके सिर पर पक्षियों ने अण्डे दिये। उनसे बच्चे पैदा हुए और उनकी आपने अच्छी तरह रक्षा की। जब वे बच्चे पंख निकलने पर उड़ने के लिए समर्थ हो गये तब उड़ कर चले गये। उस समय आपने पक्षियों के पालन करने को धर्म का स्वरूप मान लिया। आपने यह निश्चय कर लिया कि पक्षियों का पालन

करने से हमको धर्म मिल गया । यह आपने अपने मन में बड़ा घमण्ड किया । आपको जब घमण्ड हो गया तब आपने उसे वाणी द्वारा प्रकट किया । उस समय मेरे सम्बन्ध की आकाश-वाणी हुई । उसी को सुन कर क्रोध में भरे हुए आप यहाँ आये हैं । हे मुने ! अब आप बतलाइए कि मैं आपका क्या काम करूँ । ऐसा मेरे करने के योग्य कौन सा काम है जो आप को प्यारा लगे । मैं वही काम करूँगा जिसके करने से आप ख़ुश होंगे ।

-:०:-

चौथा परिच्छेद ।

भीष्मजी धर्मराज युधिष्ठिर से कहने लगे कि उस समय जब बुद्धिमान् तुलाधार ने महात्मा जाजलि से इस तरह कहा तब जापक-प्रवर जाजलि ने तुलाधार को जवाब देना शुरू किया । वह कहने लगा—

भाई तुलाधार! तुम सब तरह के रस, गन्ध, वनस्पति, ओषधि और फल-मूलादि बेचा करते हो । तुमने इस तरह की नैष्ठिकी बुद्धि कहां से पाई; तुमको इस तरह का उत्कृष्ट ज्ञान कहाँ से मिला ? हे बुद्धिमान् ! मैं चाहता हूँ कि तुम इसी विषय का विस्तारपूर्वक मेरे सामने वर्णन करो ।

भीष्म जी ने महाराज युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन् ! जब यशस्वी जाजलि महात्मा ने इस तरह तुलाधार से पूछा तब धर्म और अर्थ का तत्त्व समझने वाला तुलाधार, ज्ञानतृप्त कठोर तपस्वी जाजलि से सूक्ष्म धर्मों का वर्णन करने लगा ।

तुलाधार ने कहा—हे जाजले ! जिस धर्म को महात्मा सब का हितकारी और सब को सुख देने वाला सब से पुराना जानते या मानते हैं उसी वेद और उपनिषदों के सहित सूक्ष्म सनातन धर्म को मैं अच्छी तरह जानता और समझता हूँ । मैं जिस तरह

अपना जीवन-निर्वाह करता हूँ—संसार में रह कर मनुष्य को जिस तरह अपना समय व्यतीत करना चाहिए—उसका मैं वर्णन करता हूँ । सुनिए ।

हे महात्मन् ! मनुष्य को अपनी ऐसी वृत्ति रखनी चाहिए उसको दूसरों के साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिए—कि वह किसी प्राणी से कभी द्वेष न रक्खे, या आपत्ति के समय ऐसा करना पड़े तो इतना द्वेष करे जिससे उसको कष्ट न मालूम हो, उससे उसका अहित न हो जाय, किन्तु उदासीनता रक्खे। इस तरह का बर्ताव करना धर्म माना गया है। मैं अपनी वृत्ति सदा इसी तरह की रखता हूँ। इसी तरह मैं अपना जीवन-निर्वाह कर रहा हूँ ।

दूसरे मनुष्यों से काटी हुई लकड़ी और तिनकों से मैंने रहने के लिए यह घर बना लिया है। इसी में मैं रहता हूँ। शराब के सिवा लाख, केशर आदि, छोटी बड़ी क़ीमत के गन्धद्रव्य और अनेक तरह के रस धर्मपूर्वक दूसरों से ख़रीद लेता हूँ और फिर थोड़ा सा लाभ करके धर्मपूर्वक ही उन्हें बेंच देता हूँ। इस तरह की ख़रीद फ़रोख़्त में मैं छल कपट, दगाबाज़ी या घमंड कुछ नहीं करता ।

हे विद्वन् ! जो मनुष्य संसार के व्यवहार में मन, वाणी और कर्म से सब की भलाई चाहता है वही धर्म के तत्त्व को जानता या जान सकता है। मैं अधर्म से कभी किसी चीज़ की इच्छा नहीं करता। न मैं कभी धर्म के विरुद्ध किसी काम को करता या करना चाहता हूँ। मैं कभी किसी से द्वेष नहीं करता और न

कभी मैं कामवश होता हूँ। मैं इन्द्रियों का .गुलाम बनना पसन्द नहीं करता। हे महात्मन्! मैं प्राणी मात्र को एक दृष्टि से देखता हूँ—मैं सब प्राणियों को एक पिता की सन्तान जान कर उन्हें एक सा मानता हूँ। यह मेरा व्रत है—यह मेरा रोज़ का व्यवहार है—आप इसे सोचिए और समझिए।

हे विद्वन्! मेरा तुलादण्ड सब प्राणियों के लिए समानभाव से खड़ा है। वह सब के लिए एकसा है। उससे तोली हुई चीज़ किसी के लिए अधिक हो और किसी के लिए कम—यह कभी नहीं होता। किन्तु सब को एक भाव और एक सी तोल से दिया जाता है। जिस तरह आकाश अपनी रंगत बदलता रहता है। वह कभी नीला कभी सफ़ेद और कभी लाल दिखलाई देता है इसी तरह मैं रोज़ लोगों की विचित्रता देख रहा हूँ। कोई मनुष्य कभी कुछ करता दिखलाई देता है, कभी कुछ। पर मैं किसी मनुष्य के करतब की न कभी बुराई करता और न प्रशंसा। मैं सब के साथ एक-बुद्धि रखता हूँ। और तटस्थ रहता हुआ निर्वाह करता हूँ। आप मुझको संसार में सब में समान बुद्धिवाला समझिए। इसी तरह ढेला, पत्थर और सुवर्ण में भी मुझे एक बुद्धि रखने वाला समझिए।

जिस तरह अन्धे, बहरे और पागल आदि मनुष्यों के इन्द्रिय-गोलक इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं के द्वारा आच्छादित हैं तो भी वे लोग श्वास लेते हुए अपना जीवन धारण किया करते हैं; उसी तरह उनको देख कर मैं भी अपने में वैसी ही उपमा दिया करता हूँ। जिस तरह ग़रीब मनुष्य किसी न किसी तरह अपना

गुज़ारा किया करते हैं । जिस दशा में वे हैं वैसे ही मैं सोमरस पीने वाले अमीर और बलवान् मनुष्यों को समझता हूँ । मैं सब को समानभाव से जानता हूँ ।

मैं इस समय वाणिज्य कर रहा हूँ । उसे मैं प्राणयात्रा के लिए करता हूँ । लालच या तृष्णा के वशीभूत हो कर नहीं करता । जिस तरह बुड्ढे, रोगी और दुर्बल मनुष्यों को संसार के विषयों की इच्छा नहीं रहती । उसे वे छोड़ देते हैं या स्वभावत: उनसे छूट जाती है; उसी तरह मुझे भी धन या काम-भोगों की इच्छा नहीं रही ।

कोई ब्रह्मज्ञानी जब किसी से नहीं डरता और जब दूसरे प्राणी भी उससे किसी तरह नहीं डरते और जब उसकी अभिलाषायें और रागद्वेष जड़ से नष्ट हो जाते हैं तब उसको ब्रह्म की प्राप्ति हुई समझनी चाहिए । जब वह मन, वाणी तथा कर्म से सब प्राणियों के साथ बुरा भाव छोड़ देता है तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है । ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह अपना बर्त्ताव इस तरह का करे जिससे कोई प्राणी उससे किसी तरह न डरे । दूसरों को अपने से अभय कर देने के बराबर दूसरा धर्म न हुआ, न होगा और न है । जो दूसरों को निर्भय करता है उसे अवश्य मुक्ति मिलती है ।

मनुष्य को चाहिए कि वह कभी किसी से कठोर बात न कहे और न अपराधी को सख़्त सज़ा दे । जिस मनुष्य से दूसरे प्राणी मृत्यु के समान डरते रहते हैं उसको भी अपनी कुशल न समझनी चाहिए । उसे भी ज़रूर किसी वक़्त दूसरे से डर लगेगा । और वह ऐहिक और पारलौकिक धर्म प्राप्त नहीं कर सकता ।

हे मुने ! मैं उन महात्मा वृद्ध मनुष्यों का सा बर्त्ताव करता हूँ। बर्त्ताव ही नहीं किन्तु ठीक उनका अनुकरण (नक़ल) करता हूँ जिन्होंने दूसरों के साथ उचित बर्त्ताव किया है, जो पुत्रपौत्र-वान् हैं और जो किसी को किसी तरह न सताना अपना परम धर्म समझते हैं।

पुराने ज़माने के महात्माओं का बतलाया हुआ जो धर्म था वह रहा नहीं—लोग उसकी उपेक्षा करने लगे—और सदाचार को समझ लेना, उसका अच्छी तरह ज्ञान हो जाना कठिन हो गया; इसलिए, जो विद्वान्, तपस्वी और बलवान् हैं उनको भी सदाचार का निर्णय करने में कठिनता हो जाती है।

हे महात्मन् ! बुद्धिमान् को चाहिए कि वह समझपूर्वक धर्म को स्वीकार करे। वह सज्जनों की तरह अपनी इंद्रियों को अपने वश में करे। फिर किसी से ईर्ष्या द्वेष न करता हुआ संसार में भ्रमण करे। धर्म को समझ लेने के लिए अहिंसा, जितेन्द्रियता और ज्ञान—इन तीन बातों की बड़ी ज़रूरत है। जो इन तीनों का मर्म जान लेता है, जो इन तीनों का अपने में ठीक उपयोग कर सकता है वही धर्म का मर्म जान सकता है। दूसरा नहीं।

हे मुने ! जिस तरह नदी में बहती हुई लकड़ी अकस्मात् दूसरी लकड़ी से मिल जाती है। और भी बहुत सी लकड़ियां उस जगह मिलती रहती हैं। कभी कभी तिनके, लकड़ी और सूखा गोबर—ये सब बिना किसी इच्छा के बहते हुए नदी में आपस में मिल जाते हैं। फिर थोड़ी देर में पानी के ज़ोर से एक का भी

पता नहीं चलता; वहाँ से वे बह जाते हैं। इसी तरह मनुष्यों के कर्म-प्रवाह के द्वारा स्त्रीपुत्रादि का संयोग और वियोग हुआ करता है। बात यह कि यदि विवेकी मनुष्य को सांसारिक ऐश्वर्य धन आदि बिना इच्छा किये मिल जाय तो उसे उससे विशेष रागद्वेष नहीं करना चाहिए। क्योंकि सांसारिक ऐश्वर्य चिरस्थायी नहीं होता, वह तो एक समय मिला और दूसरे समय अलग हो गया। इसलिए विवेकी मनुष्य उनका इस तरह से भोग करे कि उनमें लीन न हो जाय। ऐसा ही मनुष्य धर्म का मर्म समझ सकता है।

हे विद्वन्! जिस मनुष्य से कोई प्राणी किसी तरह का भय नहीं करता, वह दूसरे प्राणियों से निडर और निर्भय रहता है। जब मनुष्य मन, वाणी और कर्म से अहिंसक बन जाता है तब सब प्राणी उससे वैर करना छोड़ देते हैं। जब किसी मनुष्य की यह प्रसिद्धि हो जाती है कि वह अहिंसक है तब समझना चाहिए कि दूसरों का भी वैर उसके साथ छूट गया।

हे मुने! जिस तरह वाडवानल से किनारे पर रहने वाले सब जलचर जीव और चीत्कार करने वाले भेड़िया आदि हिंसक जीवों से वनचर जीव डरते रहते हैं, उसी तरह जिस मनुष्य के पास आते और जाते प्राणी डरते हैं उस मनुष्य को महा-अधर्मी और महानीच समझना चाहिए। इस लिए मनुष्य को अभयदानरूपी आचार का सब तरह से प्रयत्न करना चाहिए। जो लोग सामर्थ्यवान् हैं और अपने सामर्थ्यरूपी धन से दूसरों की सहायता करते हैं वे इस लोक में ऐश्वर्यशाली और परलोक

में परम सुखी होते हैं। इसी से कवि लोगों ने सब शास्त्रों में अभयदाता को ही सब से श्रेष्ठ माना है।

जिनके पास सांसारिक ऐश्वर्य वर्तमान हो और उससे वे अपने को सुखी समझते हों; उनको भी उचित है कि वे अपनी प्रतिष्ठा के लिए अभयदान करें। जो विवेकी हों उनको भी ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अभयदान ज़रूर करना चाहिए। तपस्या, यज्ञ, दान और बुद्धिमत्ता की बातों से इस लोक में जो फलभोग मिलते हैं, अभयदान के सहारे से वे सब फल मिल जाते हैं। संसार में जो लोग सब प्राणियों को अभयदक्षिणा का दान करते हैं, वे सब यज्ञ और याजन के फलस्वरूप अभयदक्षिणा पाते हैं। सब प्राणियों की अहिंसा से बढ़ कर श्रेष्ठ धर्म और कुछ भी नहीं है। कभी किसी प्राणी को मन, वाणी, शरीर और चेष्टा से किसी प्रकार न दुःख दे, न सतावे। यही सर्वोपरि धर्म है।

हे मुने! जिससे कोई जीव कभी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, उसे सब प्राणियों से अभय प्राप्त होता है। और, जिससे घर में आये हुए साँप की तरह सब लोग घबराते हैं वह ऐहिक और पारलौकिक धर्म प्राप्त करने में कभी समर्थ नहीं होता।

जो सब प्राणियों को अपने आत्मा के समान और समान भाव से सब जीवों को देखता है, देवता लोग भी उस ब्रह्मलोक आदि के अनभिलाषी साधक पद के इच्छुक होकर उसके आचरित मार्ग में भ्रमण करते हुए घबरा जाते हैं।

हे महात्मन्! मैं आपसे सच कहता हूँ। आप मेरे कहने

का विश्वास मानिए और उसमें श्रद्धा कीजिए कि सब प्राणियों को अभयदान देना सब दानों से उत्तम दान कहलाता है।

सब काम स्वर्गफल का साधन करने के लिए कभी आसान होते हैं और कभी स्वर्गफल के भोगों में बाधा पहुँचाने वाले वे ही कठिन हो जाते हैं। इसलिए कर्मों का उलट-फेर देख कर सज्जन घबराने लगते हैं। जो आज अपने कर्मानुसार अमीर है वही अपने कर्मानुसार कल ग़रीब हो सकता है। कर्मों की ऐसी ही गति है। उनका उलट फेर का चक्र सदा चला करता है। इस तरह की गति देख कर सज्जन घबरा जाते हैं। हे जाजले! स्थूल धर्म यज्ञ आदि से सूक्ष्म अभयदान-धर्म का अनुष्ठान करने से फलहीन नहीं होता। ब्रह्म की प्राप्ति और स्वर्ग का लाभ करने के लिए वेदों में शम दम आदि के साधन और यज्ञ आदि धर्म कहे गये हैं। सदाचार धर्म अत्यन्त सूक्ष्म होने से वह पूर्ण रीति से जाना नहीं जाता। क्योंकि बनावटी धर्म भी प्रचलित हो गये हैं। जब मनुष्य धर्म और बनावटी धर्म—दोनों को अच्छी तरह जान ले तब सदाचार धर्म को अच्छी तरह जान सकेगा।

सब तरह के सदाचार जानने के लिए तैयार होने पर भी उनमें अनेक तरह के भिन्न भिन्न व्यवहार मालूम पड़ते हैं। हे मुने! अनेक मनुष्य बैलों को नामर्द बना डालते, उनकी नाक छेद कर उसमें नाथ पहनाते, उन पर अनेक तरह का बोझ लाद कर जहाँ तहाँ ले जाते, उनको बाँधते और मारते पीटते हैं। अनेक मनुष्य ऐसे हैं जो प्राणियों को मार कर उन्हें खाते हैं। ऐसे मनुष्यों को तुम बुरा क्यों नहीं समझते। देखो, अनेक

मनुष्य मनुष्यों को दासपन से भोगते हैं—उन्हें दास बना कर रात दिन उनसे काम लेते हैं। क्या इन सब कामों के करने में अधर्म नहीं है। ऐसे कामों के करने में तो ऐसा अधर्म है कि उनमें सब अधर्म आजाते हैं। पर रस आदि के बेंचने में कुछ भी अधर्म नहीं मालूम होता। क्योंकि इस व्यापार में किसी को तकलीफ़ नहीं होती—किसी की हिंसा नहीं की जाती।

मनुष्य मनुष्यों को दासत्व की साँकल में बाँध रखते हैं। दूसरी जात के मनुष्यों की बात जाने दीजिए। अनेक मनुष्य अपनी ही जाति के मनुष्यों को रात-दिन बन्धन और निरोध करके दुःख भोग कराते हैं। ऐसा जो करते हैं क्या उनको यह नहीं मालूम कि वध, बन्धन और निरोध करने का कितना दुःख होता है। इस बात को वे अच्छी तरह जानते हैं।

हमारा शरीर पाञ्चभौतिक है। उस पञ्चेन्द्रिय-युक्त शरीर में सब देवता रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, ऋतु और यम ये सब देवता जिस जीव-शरीर में निवास करते हैं, उन जीवों के बेचने में जब कोई फल नहीं है तब मरे हुए जीवों की तो कोई बात ही नहीं। उसका विचार करना ही व्यर्थ है। बकरे में अग्नि, मेढ़े में जल, घोड़े में सूर्य, पृथिवी में विराट् और गाय तथा बछड़े में सोम (चन्द्र) तत्त्व अधिकता से रहता है। इन के बेचने से कोई मनुष्य सिद्ध नहीं बन सकता। हे ब्रह्मन्! जब मनुष्य गौ आदि जीवों को बेचते हैं तब तेल, घी, शहद और दवाइयों की चीज़ों के बेचने में क्या विशेषता है?

इस कथन का मतलब यह है कि महात्मा जाजलि ने तुला-

धार से कहा था कि अनेक तरह के रस आदि को बेचते हुए तुम इस तरह के धर्मात्मा किस तरह हो गये। क्योंकि शास्त्रों में रसों को बेचना ब्राह्मण के लिए मना लिखा है। शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करके यदि कोई ब्राह्मण रस आदि को बेचे तो वह निन्दित या दोषभागी समझा जाता है। ब्राह्मण के लिए रसों का बेचना निषेध होने पर दूसरों के लिए भी, जो सब से बढ़ कर धर्मात्मा कहलाते हैं, निषेध समझना चाहिए। उनको भी ज़रूर दोष लगेगा। और, रसों के बेचने का निषेध सर्वथा हिंसा से बचने के लिए समझना चाहिए। जो कभी मन, वाणी या कर्म से कभी किसी को नहीं सताता, किसी तरह की हिंसा नहीं करता वह रस आदि को बेचने पर भी धर्मात्मा ज़रूर माना जायगा। जो गौ आदि जानवरों को बेचते हैं वे रस आदि बेचने वाले की अपेक्षा अधिक हिंसक हैं। हिंसाजन्य कामों से बचता हुआ यदि रस आदि बेचे और धर्म के मर्म को अच्छी तरह जान जाय तो वह ज़रूर धर्मात्मा कहलावेगा। यही तुलाधार के कहने का तात्पर्य है।

जो स्थान जानवरों के लिए मक्खी आदि से रहित सुखदाई है, जहां वे बहुत दिन से सुख-पूर्वक रहते हैं और वहां उन पर प्यार करने वाली उनकी मातायें भी रहती हैं। ऐसे स्थानों से, उनके सुख की सब बातों को जानते हुए भी लोग ऐसी दूसरी जगह उन्हें ले जाते हैं जहां उन्हें डांस आदि जानवरों से दुख पहुँचता और उनके रहने का स्थान भी मैला होता है। वहां जाकर पहले स्थान को याद करके वे बहुत दुखी हुआ करते हैं।

कोई कोई जानवर ऐसे होते हैं कि नई जगह जाकर कई दिन तक चारा भी नहीं खाते । इससे समझना चाहिए कि जहाँ वे पहले रहते थे वह स्थान उनको सुखदाई था और अपने साथियों का बिछोह होने से नया स्थान उन्हें सुख देने वाला नहीं है ।

संसार में यह भी देखा जाता है कि कोई कोई मनुष्य बैल और भैंसे आदि जानवरों पर सवारी भी करते हैं । उससे उन्हें बहुत दुख होता है । गाड़ी में तो लोग उन जानवरों को प्रायः जोतते ही हैं । पर कोई कोई हाँकनेवाले गाड़ीवान उनको बेहद दुख देते हैं । उन्हें बेदर्द मारते पीटते हैं । मैं समझता और मानता हूँ कि इस तरह जानवरों को दुख देना भ्रूण-हत्या से कम नहीं है ।

कोई कोई मनुष्य खेती करना अच्छा समझते हैं । पर मैं उनकी भी प्रशंसा नहीं कर सकता । क्योंकि खेती करने वालों में भी कोई कोई हिंसकवृत्ति करते हैं । किसानों में भी कोई कोई बड़े निर्दई होते हैं । वे जानवरों को बहुत दुख देते हैं । इसलिए खेती में भी हिंसा का डर है । गर्भहत्या में तो एक ही बार मरना-रूप दुख होता है; पर निर्दई लोग जानवरों को बार बार और बहुत दिनों तक दुख दिया करते हैं । इससे मेरी राय में भ्रूण-हत्या से वह बड़ी हिंसा है ।

हे महात्मन् ! लौहमुख हल पृथिवी में रहनेवाले चूहे, साँप आदि अनेक जानवरों की हत्या करता है । उसी तरह हल में चलनेवाले दुखी बैलों को तो देखिए । वे कितनी तकलीफ़ भोगते हैं । गाय किसी को दुख नहीं पहुँचाती । इसी से उसका नाम

अघ्नी है । वह अवध्य है । उसे कभी किसी को न मारना चाहिए । जो बैल या गाय को मारता है वह मानो अपने लिए बड़ा अनर्थ पैदा करता है ।

एक बार जितेन्द्रिय ऋषियों ने राजा नहुष से इस विषय में बात-चीत की थी । उन्होंने कहा था कि गाय मातृ-स्वरूप और वृषभ—बैल—प्रजापति-स्वरूप है । तुमने उनको मार डाला । हे नहुष ! यह तुमने बहुत बुरा काम किया । तुम्हारे लिए हम सबको बड़ा दुख होगा ।

हे जाजले ! जिस तरह इन्द्र की ब्रह्महत्या का पाप स्त्रियों में रज-रूप से निःक्षिप्त हुआ था उसी तरह उन प्रतापशाली ऋषियों ने नहुष के किये हुए गौ और वृषभ की हत्या के पाप को सब प्राणियों के ऊपर एक सौ एक रोग-रूप से गिरा दिया । ब्रह्महत्या और गोहत्या का पाप एकसा माना गया है । इसी से ऋषि लोग राजा नहुष को भ्रूण-हत्या करनेवाला कहने लगे । उन्होंने नहुष से कहा कि हम लोग तुम्हारे घर यज्ञ न करायँगे । यह कह कर उन सब तत्त्वार्थदर्शी, महानुभाव, जितेन्द्रिय और शान्त महर्षियों ने ध्यान-पूर्वक नहुष के किये हुए पाप को मन में अच्छी तरह समझ लिया कि इसने बड़ा अनर्थ कर डाला । इसका यह काम सदाचार का नहीं किन्तु अनाचार का है । फिर उसके पाप को प्राणियों के ऊपर रोग-रूप से गिरा दिया ।

हे जाजले ! देखो, संसार में ऐसे ऐसे घोर अकल्याणकर अनाचार प्रचलित हैं । आप केवल आचरण करने में चतुर हैं; धर्म का तत्त्व अच्छी तरह नहीं समझते । विवेकी मनुष्य को

चाहिए कि वह तर्क या कारण के अनुसार धर्माचरण करे; जिससे दूसरे जीवों को भय न हो वैसा ही धर्माचरण करना चाहिए। संसार के साधारण मनुष्यों की तरह उसे व्यवहार नहीं करना चाहिए। प्रयोजन यह कि जो मनुष्य तर्क-वितर्क करके धर्म का निश्चय करता है वह उससे कभी चलायमान नहीं होता। योंही साधारण रीति से जो किसी बात पर विश्वास कर लेता है; सो ठीक नहीं। उसको विश्वास करने में जिस तरह कोई दिक्कत नहीं हुई, कुछ देर नहीं लगी। उसी तरह उस बात को छोड़ देने में भी कुछ देर नहीं लगती। मनु महाराज ने भी इस विषय में यही कहा है कि 'जो तर्क के द्वारा किसी बात का निश्चय करता है वही धर्म के मर्म को समझ सकता है; दूसरा कभी नहीं समझ सकता'। इसलिए कारणवाद-पूर्वक मनुष्य को धर्म का निश्चय करना चाहिए।

हे जाजले ! मैं अपने विषय में एक बात आप को और बतलाता हूँ; उसे आप सुनिए और सोचिए। वह यह कि यदि कोई मनुष्य मुझे किसी तरह सताने लगे या मारने तक को तैयार हो तो मैं उसका उससे बदला देना पसन्द नहीं करता। न मैं कभी उसकी किसी से बुराई करता और न कभी उसका अहित करने की चेष्टा करता हूँ। इसी तरह जो मनुष्य मेरी प्रशंसा किया करते हैं, उनकी भी मैं न प्रशंसा करता और न उनको किसी प्रकार प्रसन्न करने का उपाय करता हूँ। मैं दोनों तरह के मनुष्यों की सब बातें सह लेता हूँ। उनकी बातों से मुझे रागद्वेष कुछ भी नहीं होता। दोनों तरह के मनुष्यों को

मैं एक सा समझता और एक साही उनके साथ व्यवहार करता हूँ ।

बुद्धिमान् मनुष्य ऊपर बतलायें हुए धर्म की प्रशंसा किया करते हैं । वह धर्म युक्ति-युक्त और जितेन्द्रिय महात्माओं से सेवित तथा उनका माना हुआ है । जो मनुष्य धर्म-शील होते हैं वे बड़ी चतुरता से उक्त धर्म को देखते, मानते और सुनते हैं । धर्म विषय में जब तक मनुष्य बुद्धिमत्ता से काम नहीं लेता तब तक उसका मर्म समझना कठिन है । क्योंकि शास्त्रों का सिद्धान्त है कि "धर्म का तत्त्व गुहा में छिपा हुआ रहता है; बड़े बड़े महात्माओं ने जिस मार्ग का अवलम्बन किया है उसी मार्ग का सब को अनुसरण करना चाहिए" । जब धर्म का तत्त्व गुहा में छिपा हुआ रहता है तब उसे साधारण रीति से समझ लेना कठिन है । उसे समझ लेने के लिए बड़ी बारीक बुद्धि से काम लेना चाहिए ।

-:-०-:-

पाँचवाँ परिच्छेद

जब तुलाधार महात्मा जाजलि से अपना कथन समाप्त कर चुके तब जाजलि ने उनसे कहा—हे तुलाधार! तुम्हारे हाथ में तराज़ू है। उससे तुम रात दिन काम लेते हो। उसीसे तुम्हारी जीविका है। ऐसी दशा में तुमने जो धर्म के विषय में कह कर जो धर्म का लक्षण बतलाया है वह बिल्कुल ठीक नहीं मालूम होता। तुम्हारे कहे हुए धर्म से स्वर्ग के द्वार का अवरोध होगा और मनुष्यों की जीविका में भी फ़र्क पड़ेगा। मनुष्य अपना पेट भरने का उपाय न कर सकेंगे।

खेती करने से अन्न पैदा होता है। उस अन्न से ही तुम भी जीते हो। पशुओं के दूध या उनकी दूसरी सहायताओं और अन्न से सब मनुष्य जीते हैं। शास्त्रों का सिद्धान्त है कि "अन्नं वै प्राणिनां प्राणा:" अन्न सब प्राणियों का जीवन है। यदि अन्न न मिले तो कोई मनुष्य धर्म कर्म करने में समर्थ नहीं हो सकता। धर्म, कर्म और यज्ञ आदि सब अन्न की सहायता से हुआ करते हैं। तुमने खेती को बुरा बतलाया था। यदि खेती न की जायगी तो अन्न कहाँ से पैदा होगा। अन्न के न मिलने पर प्राणी किस तरह जी सकेंगे? अन्न के बिना मनुष्यों का जीवन नहीं हो सकता और स्वर्ग-प्राप्ति के साधन भी नहीं हो सकते।

गाय आदि जानवरों के घी, दूध आदि चीज़ों से तथा

अनेक ओषधियों से यज्ञ किया जाता है। तुमने मुझ से जो बातें कीं उनसे तुम्हारा नास्तिकपन झलकता है। यह संसार एक मात्र खेती से जीता है। यदि खेती करना बन्द कर दिया जाय तो संसार में कोई भी जीवित नहीं रह सकता; या किसी दूसरे उपाय से अपना निर्वाह नहीं कर सकता। खेती को तुम इतना बुरा क्यों कहते हो ?

तुलाधार ने उत्तर दिया—हे जाजले ! मैंने अपने रहन-सहन और अपनी वृत्ति के विषय में आप से कहा था। मैं। वेद की निन्दा नहीं की। मैं नास्तिक नहीं हूँ। मैंने धर्म के लक्षणों का वर्णन किया था। यज्ञ की बुराई नहीं की थी। पर हाँ, यज्ञ-सम्बन्धी बातों का समझने वाला संसार में कोई कोई होता है। वह विषय अत्यन्त कठिन है। उसका मर्म सब कोई नहीं समझ सकता। ब्राह्मण-यज्ञ और उस यज्ञ के जानने वाले विद्वानों को मैं बार बार प्रणाम करता हूँ। आप दृष्टि फैला कर तत्त्व-बुद्धि से सोचिए तो आप को मालूम होगा कि ब्राह्मणों ने अपने योग-यज्ञ आदि यज्ञों को छोड़ दिया है और क्षत्रिय-यज्ञ करने लगे हैं। हे मुने ! असली बात यह है कि जो मनुष्य लोभी, धनपरायण और नास्तिक थे, और जो वेदविद्या को, उसके मर्म को या सिद्धान्तों को न जान सके, उन्हीं ने यह सत्याभास—सत्य की तरह दिखलाई देने वाला—झूठा सिद्धान्त प्रचलित कर दिया। वे सत्याभास यज्ञ की प्रशंसा में कहते हैं कि इस यज्ञ में यह दक्षिणा देने से यज्ञ पूरा होगा, या कामनायें पूरी होंगी; इत्यादि वाक्य कह कर वे ऐसे यज्ञों की तारीफ़ किया करते हैं।

"इस यज्ञ में यह देना चाहिए, इतना देने से तुम्हारी तारीफ़ होगी", इत्यादि वाक्य कह कर, और झूठी प्रशंसा करके जो धन लिया जाता है उस धन को चोरी का धन समझना चाहिए। ऐसे धनों से जो काम किये जाते हैं वे अच्छे नहीं।

शास्त्रों में दान की बड़ी प्रशंसा की गई है। तुलाधार ने यज्ञ आदि के कामों में दक्षिणा देना बुरा नहीं बतलाया। किन्तु उन के कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग लोभी होते हैं वे यज्ञ करानेवालों के सामने दान की प्रशंसा किया करते हैं। वे उस यज्ञ का सब से बड़ा फल यही समझते हैं कि हम को अच्छी दक्षिणा मिल जाय। इस तरह की वृत्ति के जो मनुष्य हैं असल में वे यज्ञ आदि सत्कर्म कराने के अधिकारी ही नहीं। ऐसे मनुष्यों से यज्ञ कराना ठीक नहीं। तुलाधार ने लोभी मनुष्यों की बुराई की है। असल में जो लोभी होता है वह सब अधर्म-कार्य कर सकता है। लोभी मनुष्यों की वृत्ति का खण्डन करने से तुलाधार का मतलब है; यज्ञ में दक्षिणा आदि देने का निषेध करने से नहीं। इस विषय में एक महात्मा का वचन है कि "हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः।" अर्थात् जिस यज्ञ में दान-दक्षिणा नहीं दी जाती वह यज्ञ नष्ट हो जाता है—उसका यथार्थ फल नहीं मिलता। दान के विषय में इस तरह के अनेक वचन पुरानी किताबों में मिलते हैं। पर सुपात्र को दान देने से वह फलीभूत होता है, कुपात्र को देने से नहीं।

धर्मपूर्वक कमाये हुए धन से जो हव्य बनाया जाता है और नमस्कार-पूर्वक अग्नि में आहुत किया जाता है उससे, शास्त्रों में

बतलाई हुई रीति से, वेद-पाठ करने से और औषधस्वरूप सुकृत से जो हव्य प्राप्त होता है उसके द्वारा हवन करने से अग्नि आदि देवता प्रसन्न होते हैं। इस तरह शास्त्रों में बतलाई हुई देवताओं की पूजा समझनी चाहिए। शास्त्रों में देवताओं की पूजा करने की जो रीति बतलाई गई है उसी के अनुसार उनकी पूजा करनी चाहिए। तभी देवता प्रसन्न होते हैं। उसके विपरीत करने से देवता प्रसन्न नहीं होते, किन्तु अप्रसन्न हो जाते हैं। जो मनुष्य किसी कामना का ख़याल करके या जिन मनुष्यों का अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, जो धर्मभाव से यज्ञ आदि सत्कर्म नहीं करते, उनकी सन्तान दुर्गुणी पैदा होती है। श्रौत-धर्म—यज्ञ करना—और स्मार्त-धर्म—कुआ खुदाना, प्याऊ बैठाना और दान करना आदि—दोनों तरह के धर्मों के करने का अच्छा फल उसी मनुष्य को मिलता है जिसका अन्तःकरण शुद्ध है। जो शुद्ध वृत्ति से कोई अच्छा काम करता है तो उसे अच्छा फल मिलता है; नहीं तो उलटा।

जो मनुष्य जैसा होता है, उसकी जैसी प्रकृति होती है वैसी ही प्रकृति या स्वभाव की उसकी सन्तान हुआ करती है। अगर कोई मनुष्य लोभी है तो उसकी सन्तान भी लोभी पैदा होगी। यदि वह किसी के साथ रागद्वेष नहीं करता तो उसकी सन्तान भी रागद्वेष-रहित होगी। इसी तरह यजमान का जैसा स्वभाव होगा वैसे ही स्वभाव की उसकी सन्तान होगी। कारण में जैसे गुण होते हैं वैसे ही कार्य में आते हैं। यदि यजमान यह चाहे कि मेरी सन्तान अच्छी हो तो उसे चाहिए कि

पहले वह अपने को वैसा बनावे। जब पिता अच्छा न होगा तब सन्तान अच्छी कैसे हो सकती है।

जिक तरह आकाश से साफ़ पानी बरसता है और सब को मिलता है। उसी तरह यज्ञ का अनुष्ठान करने से सन्तान अच्छी और निर्विघ्न पैदा होती है। क्योंकि यज्ञ उत्पत्ति की खान है। हे जाजले! आग में डाली हुई आहुति सूर्य के पास पहुँचती है; सूर्य से वर्षा होती है और वर्षा के होने से पृथिवी पर अन्न उपजता है। उस अन्न के खाने से प्राणी के शरीर आदि की वृद्धि होती और वीर्य आदि शरीर में धातु बनते और बढ़ते हैं। फिर उससे प्राणियों के शरीर बनते हैं। एक मात्र अन्न ही प्राणियों के जीवन का साधन है। यदि अन्न न मिले तो मनुष्य बहुत दिन जीवित नहीं रह सकता और न उससे कोई काम हो सकता है।

पहले यज्ञ करने वाले मनुष्यों ने यज्ञ का अनुष्ठान करके सब कामनाओं को प्राप्त किया। उनके यज्ञ करने से ज़मीन बिना ही जोते अन्न आदि उत्पन्न करती और वृक्षों पर अनायास ही फल लगते थे। लेकिन उन महात्माओं ने यज्ञ करते समय किसी तरह के फल की इच्छा नहीं की; निःस्वार्थ हो कर वे यज्ञ आदि सत्कर्म और धर्म-कार्य करते थे। जो मनुष्य किसी धर्म-कार्य के करने में फल पाने की पहले ही से इच्छा करने लगता है—फल के उद्देश से किसी धर्म-कार्य को करता है तो उसका वह कर्म अच्छी तरह फलीभूत नहीं होता। शास्त्रों का सिद्धान्त है कि मनुष्य को निःस्वार्थभाव से यज्ञ आदि धर्म-कार्य करने

चाहिए। मनुष्य को धर्म-कार्य करने का अधिकार है न कि फलप्राप्ति करने का। किये हुए कर्म का फल तो मिलेगा ही। उसका कर्म ही उसे फल दिलावेगा। ऐसी दशा में मनुष्य को धर्म का काम करने के साथ ही साथ फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

'यज्ञ करने से हम को फल मिलेगा या नहीं' इस तरह जो मनुष्य शङ्का करता हुआ किसी प्रकार का यज्ञ करता है तो वह मनुष्य असाधु, दम्भी, धनलोलुप और लोभी कहा जाता है। ऐसे मनुष्य को कोई भी धर्मात्मा नहीं कहता किन्तु उसे लोभी बतला कर सब मनुष्य उसकी बुराई किया करते हैं।

हे ब्राह्मण! जो मनुष्य कुतर्क से और वितण्डावाद से वेदों को अप्रमाणित सिद्ध करता है, जो प्रमाण को अप्रमाण ठहराता है वह अपने कुतर्करूपी अशुभ कर्म से पापी मनुष्यों की तरह नरक भोगता है और फिर बुरे जन्म पाता है। ऐसा मनुष्य संसार में भी पापी कहलाता और अत्यन्त मूर्ख समझा जाता है। वह सदा अज्ञानरूपी अन्धकार में पड़ कर दुख भोगता है। ऐसे मनुष्य की मुक्ति—दुःखों से छूटना—कभी नहीं होती।

नित्य कर्मों को अवश्य करना चाहिए। उनके न करने से भय होता है। इस तरह जो लोग जानते या मानते हैं वे ही ब्रह्म-निष्ठ कहलाते हैं। संसार में जो मनुष्य अपनी उम्र और जाति का ख़याल करके कर्तृत्व मालूम नहीं करते वे ही ब्राह्मण हैं। अर्थात् किये हुए कर्म का जो अभिमान नहीं करते और उसके फल के पाने की इच्छा न रखते हुए, उनमें ब्रह्मदृष्टि करते हुए जो लोग

खान-पान की तरह वैदिक कर्म किया करते हैं उन्हें लोग ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं । ऐसे ब्राह्मणों के कर्म यदि अपवित्र कुत्ते और सुअर आदि जानवरों से ख़राब हो जायँ तो भी वे अच्छी कक्षा में गिने जाते हैं । पर जब कर्म कर्ता को यह मालूम हो जाय कि इस विघ्न से मेरा यह काम ख़राब हो गया तब उसे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ।

जो मनुष्य सच बोलने और अपनी इन्द्रियों को वश में करने को यज्ञ समझते हैं, परम पुरुषार्थ करने में जिन्हें लोभ हो रहा है, धन और संसार के विषयों से जो तृप्त हो चुके हैं, और दूसरे दिन के लिए जो संसार के पदार्थों को बचा कर नहीं रखते; जो मिल गया उससे अपना गुज़ारा कर लिया, अधिक इकट्ठा नहीं करते वे मनुष्य अमत्सरी कहलाते हैं । ऐसे मनुष्यों में छल-कपट नहीं होता । क्योंकि जिन साधनों के लिए लोग छल-कपट किया करते हैं उनकी उन्हें ज़रूरत ही नहीं रही ।

जो मनुष्य क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्त्व अच्छी तरह समझता तथा ब्रह्मसम्बन्धी वेद को अच्छी तरह पढ़ता या मनन करता है और अपने ब्रह्मयज्ञ या ऋषियज्ञ में अच्छी तरह अभ्यास रखता है वह अपने आप तो सब तरह सन्तुष्ट रहता ही है किन्तु दूसरे मनुष्यों को भी वह सन्तुष्ट कर सकता है ।

हे जाजले ! यह संसार अग्नि, वायु और आदित्य आदि देवता-युक्त है । वह ब्रह्म के आश्रित है । धर्म करने वाले महात्माओं से ब्रह्म सन्तुष्ट और तृप्त होता है । उसके सन्तुष्ट होने पर जितने देवता हैं सब सन्तुष्ट और तृप्त होते हैं ।

जो मनुष्य सब रसों से तृप्त हो चुका उसको फिर किसी रस की इच्छा नहीं रहती और न वह उनके मिलने पर प्रसन्न होता है, किन्तु वह पहले से ही तृप्त या सन्तुष्ट है। इसी तरह जो मनुष्य ज्ञान से तृप्त होता है उसको किसी सुख के मिलने की कभी इच्छा नहीं होती। वह तो अपने ज्ञान-रूपी सुख को ही सदा सुख समझता है और उसीसे सन्तुष्ट और तृप्त रहता है। वह अपने ज्ञान से अपने को अशोचनीय समझता है और शोक करते हुए या संसार के जाल में फँसे हुए मनुष्यों को शोचनीय समझता है।

जिनका एक मात्र धर्म ही अवलम्ब है, जो मनुष्य धर्म को ही प्रधान मानते हैं, धर्म के कार्यों से ही जो सुखी हुआ करते हैं; उन्होंने ही सब कार्य और अकार्यों का निश्चय किया है; और जिन्होंने सत्कर्म करके उनके द्वारा अपना अन्तःकरण शुद्ध किया है; ऐसे मनुष्य हमेशा यही सोचा करते हैं कि हमारे कर्मों का फल इस जन्म में ज़रूर मिलता है; इस जन्म में न मिला तो दूसरे जन्म में मिलेगा। इस तरह सोचते हुए धर्मात्मा मनुष्य हिंसा आदि दुष्कर्मों से सदा दूर रहते हैं।

जो सब तरह के ज्ञान और विज्ञान जानने वाले सात्विक मनुष्य संसार-सागर से पार होने की इच्छा करते हैं, वे लोग, जिस जगह जाने से शोक नहीं करना पड़ता, दुखी नहीं होना पड़ता, वहाँ से पृथक् नहीं होने पड़ता, ऐसे सुखदायक, पवित्र तथा पुण्यात्माओं से सेवित पुण्यप्रद और पवित्र ब्रह्मलोक को पाते हैं। अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। मुक्ति मिल जाने पर संसार-

सम्बन्धी जितने झगड़े हैं, संसार में रह कर जिन बातों से दुख भोगना पड़ता है, वे सब छूट जाते हैं। क्योंकि वहाँ तो आनन्द ही आनन्द है। वहाँ रोग, शोक, संयोग, वियोग, हानि, लाभ आदि झगड़ों से सदा दूर रहना पड़ता है।

जो मुक्ति के अधिकारी हैं वे स्वर्ग-सुख की इच्छा नहीं किया करते। और न वे बड़ाई तथा धन के लिए यज्ञ करते हैं; किन्तु अच्छे मनुष्यों के मार्ग का अनुसरण करते हुए हिंसा का सब तरह से त्याग करके यज्ञ करते हैं। वे वनस्पति, ओपधि और फलमूल आदि को ही यज्ञ की सामग्री समझते हैं। ऐसे निर्धन मनुष्यों का यज्ञ वे लोग नहीं कराते जो लोभी, धन की इच्छा करने वाले होते हैं। लोभ बढ़ जाने से जब ऋत्विज् निर्धन श्रद्धालु मनुष्यों का यज्ञ नहीं कराते तब जो अच्छे कर्म करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं वे निज के काम करते हुए प्रजा पर दया करने की इच्छा से यज्ञ किया करते हैं।

जब लोभी ऋत्विज् निर्धन श्रद्धालु मनुष्यों का यज्ञ नहीं कराते और वे स्वयं करने लगते हैं तब वे यज्ञ कराने वाले अनधिकारी नीच मनुष्यों का यज्ञ कराना आरम्भ करते हैं और वे समझते हैं कि हम सब प्रजा को अपने धर्म के आचरण से स्वर्ग में पहुँचा सकेंगे। सज्जन मनुष्य स्वधर्माचरण के द्वारा दूसरों का उपकार किया करते हैं। उनकी सम-बुद्धि होती है इस लिए वे धर्मफल की इच्छा नहीं करते।

हे जाजले! इस प्रकार मनुष्यों में भेद होने पर भी मैं सब में समान बुद्धि रखता हूँ। अर्थात् मैं सब को एक सा मानता

हुआ सदाचरण का अनुसरण करता हूँ । हे महामुनि ! जो कर्मठ या उपासक इस संसार में यज्ञ, याजन करते हैं वे यज्ञादि के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके देवयान (कल्याण) मार्ग से चलते हैं। वे दुःख मार्ग में नहीं पड़ते । परन्तु कोई कोई कर्मठ जीव कल्याण-मार्ग में पहुँच जाते हैं पर दुबारा उनकी पुनरावृत्ति होती है। वे फिर दुःखसागर में या बन्धन में पड़ जाते हैं। और जो शुद्ध विचार वाले योगी होते हैं, जिन्होंने अपने मन का निग्रह कर लिया है, ऐसे उपासकों की पुनरावृत्ति नहीं होती। वे फिर संसार में आकर जन्म नहीं लेते । मतलब यह कि कल्याण-मार्ग से दोनों तरह के मनुष्य जाते हैं पर सङ्कल्प-भेद के बन्धन से कर्मठों की आवृत्ति और उपासकों की अनावृत्ति हुआ करती है। इस लिए जो कर्मठ हैं, कर्म करने में लगे रहते हैं और जो मन का निरोध करने वाले उपासक हैं, इन दोनों में बहुत भेद है।

सच्चा संकल्प करनेवाले उपासकों की मन की संकल्प-सिद्धि के द्वारा बैल ख़ुद जुए में जुत कर हल खींचने लगते और गायें दूध देने लगती हैं। उनके मानसिक यज्ञ संकल्प से ही सिद्ध हो जाते हैं। वे लोग संकल्प-सिद्धि हो जाने से अपने सब काम बना सकते हैं । ऋत्विज् ख़ुद यज्ञ के खम्भे गाड़ कर उन योगियों के यज्ञ करते और दक्षिणा पालेते हैं।

सिद्ध हुआ मनुष्य गाय के घी आदि साधनों से हवन कर सकता है। योगी मनुष्य में सामर्थ्य होता है जिससे वह गाय का दूध भी योग-बल से बढ़ा सकता है। नहीं तो गाय का दूध आदि दुहना एक तरह से पाप है। क्योंकि उसका बच्चा दूध न

मिलने से दुखी रहता है। पर योगी के लिए दूध बढ़ा देने से उसका दूध ले लेने में पाप नहीं लगता। सामान्य मनुष्य अपनी योग्यतानुसार ओषधियों से यज्ञ कर सकते हैं। बात यह है कि साधारण मनुष्य भी गाय की सेवा करते, उसे दाना घास खिलाते और दूध बढ़ाने का उपाय किया करते हैं। स्वभावतः जितना दूध पैदा हो सकता उससे अधिक दाना घास खिलाने से हो सकता है। ऐसी दशा में साधारण मनुष्य भी यदि घी आदि से हवन करे तो दोष का भागी न होगा।

हे जाजले! त्याग का बड़ा माहात्म्य है। उसकी बहुत प्रशंसा की गई है। इसीलिए मैंने भी आप से इस विषय में कथन किया है।

जो नई नई इच्छायें नहीं करता, जो नये नये अनेक काम शुरू नहीं करता, जो सबके साथ एकसी बुद्धि रखता है, जो किसी की बुराई भलाई नहीं करता, जो अपने आत्मिक बल से मज़बूत है, किन्तु जिसके बन्धन में डालने वाले कर्म क्षीण हो गये ऐसे मनुष्य को विद्वान् ब्राह्मण कहते, जानते और मानते हैं।

जो मनुष्य न वेदों को पढ़ता, न वैदिक-धर्म का उपदेश सुनता, न यज्ञ करता और न ब्राह्मणों को दान देता है; किन्तु काम-भोग की इच्छा से रात दिन धन कमाने में लगा रहता है। हे जाजले! ऐसे मनुष्य की क्या दशा होती है? ऐसा मनुष्य राक्षसी प्रकृति का माना जाता है। वह देवमार्ग या पितृमार्ग— दोनों में से एक मार्ग में भी जाने के लिए समर्थ नहीं होता। जो रात दिन संसार के सुखों का भोग करना चाहता है और

उन्हें भोगने के लिए उनके साधन इकट्ठा करने में लगा रहता है उसकी बुरी दशा होती है। परन्तु आशाहीनता आदि ऊपर बताई हुई बातों को देवता की तरह जो सेवनीय समझता है वह उस दशा को प्राप्त होता है जो सबसे बढ़ कर सुख की दशा मानी गई है। सच्चा सुख पाने के लिए मनुष्य को चाहिए कि ऊपर बतलाई बातों पर ध्यान दे और उन्हें ठीक ठीक करे। जो उनका ठीक सेवन करेगा उसे अवश्य अनन्त सुख मिलेगा।

जाजलि मुनि ने कहा—हे तुलाधार! मैंने ऋषि-मुनियों का पक्का विचार इस विषय में न सुना और न जाना है; इसी से मैं तुमसे यह दुर्ज्ञेय विषय पूछता हूँ। जो ऋषि पहले हो चुके वे इस समय यहाँ नहीं देखते हैं कि यहाँ लोग क्या कर रहे हैं; क्या क्या रहस्य होरहा है। हे बुद्धिमान्! यद्यपि आत्म-तीर्थ अर्थात् आत्म-स्वरूप यज्ञभूमि में पशु के समान मूर्ख मनुष्य मानसिक यज्ञ से होनेवाले सुख को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते; तब वे लोग किस कर्म के द्वारा सुख पाने के अधिकारी होंगे। यह तुम मुझे बतलाओ। मैं आप की बात का विश्वास करता और श्रद्धा रखता हुआ आप से पूछता हूँ।

तुलाधार ने कहा—जो मनुष्य दाम्भिक हैं वे श्रद्धा न रखते हुए यज्ञ किया करते हैं। उनका वह यज्ञ न कहलावेगा। यज्ञ में छलकपट की ज़रूरत नहीं। उसमें श्रद्धा अधिक रखने की ज़रूरत है। श्रद्धाहीन मनुष्य किसी तरह का यज्ञ करने का अधिकारी नहीं। श्रद्धावान् मनुष्य घी, दूध और दही से पूर्णाहुति देकर यज्ञ पूरा कर सकता है। एक गाय के घी आदि साधनों से यज्ञ

पूरा हो सकता है । मनुष्य को चाहिए कि वह शुद्ध रूप से इस तरह यज्ञ करे जिससे सब देवता प्रसन्न हों ।

हे जाजले ! जिससे आत्मसाधन हो वही यज्ञभूमि, वही सरस्वती और वही पवित्र पर्वत है । इसलिए एक मात्र परमेश्वर की उपासना करना परम तीर्थ है । उसी का ध्यान करो । इधर उधर भटकते मत फिरो ।

हे जाजले ! जो मनुष्य संसार में हिंसा-रहित धर्माचरण करते हैं और धन तथा सामर्थ्य के अनुसार धर्मानुष्ठान किया करते हैं उनको मुक्ति-सुख मिलता है । वे सदा सुखी रह कर आनन्द मनाते हैं ।

भीष्म जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि ऊपर बतलाये हुए तुलाधार के वचन युक्तिसंगत हैं । अच्छे मनुष्य ऐसे धर्म-कार्यों का सेवन किया करते हैं । वे अत्यन्त प्रशंसनीय हैं । तुलाधार ने भी उनकी बड़ी प्रशंसा की है ।

-:-०-:-

छठा परिच्छेद।

तुलाधार ने जाजलि से कहा कि हमने जो अहिंसा-रूप धर्म-मार्ग का वर्णन किया है उसे आप देखिए। वह चाहे अच्छे मनुष्यों या बुरे मनुष्यों से सेवित हो पर आप अच्छी तरह उसे मालूम कीजिए। देखिए, वह मार्ग कैसा उत्तम है। जब आप उसकी जांच करेंगे, उसे प्रत्यक्ष करेंगे तभी उसके फलाफल को अच्छी तरह जान सकेंगे।

देखिए, इस जगह अनेक तरह के पक्षी विचर रहे हैं। उनमें कई ऐसे हैं जो आप के अच्छे अंग से पैदा हुए थे, कुछ बाज़ और कुछ दूसरी जाति के हैं। इन सब ने अपने घोंसलों में घुसने के लिए हाथ पांव सिकोड़ लिये हैं। इसलिए हे महात्मन्! आप इनको इस समय बुलाइए और इन्हें देखिए। आप के शरीर में ये सब आकर चिपट जायँगे। क्योंकि आप अहिंसा-धर्म में प्रवृत्त हैं। ये सब आप से निडर रहेंगे। हे जाजले! अपने पिता को सब जानते और पहचानते हैं। आपने पक्षियों का पालन-पोषण करके उनको बड़ा किया है; इससे आप उनके पिता हैं। अब अपने पुत्र-रूप पक्षियों को बुलाइए।

भीष्मजी धर्मराज युधिष्ठिर से कहने लगे कि हे युधिष्ठिर!

तुलाधार के कहने पर जाजलि महात्मा ने उन पक्षियों को बुलाया। फिर उन पक्षियों ने अहिंसामय धर्म-वचन के अनुसार बहुत सी बातें कहीं। उन्होंने कहा:—

हे ब्रह्मन् ! अहंकारपूर्वक किया हुआ काम इस लोक और परलोक—दोनों में श्रद्धा को नष्ट कर डालता है। श्रद्धा नष्ट हो जाने पर वह श्रद्धाहीन मनुष्य को नष्ट कर देती है। श्रद्धा कल्याणकारिणी है; उससे मन प्रसन्न होता है। वह माता की तरह सबकी रक्षा करने वाली है। यह शास्त्रों का सिद्धान्त है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह श्रद्धा की रक्षा करे। किसी की श्रद्धा नष्ट करना महापाप समझना चाहिए।

जो लाभ और हानि में एक से रहने वाले, श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय, शुद्धचित्त, और ज्ञानवान् हैं और 'यज्ञ करना ठीक' है इस तरह विचार करके जो यज्ञ करना चाहते हैं उनका यज्ञ ज़रूर होना चाहिए। ऐसे मनुष्यों का यज्ञ कभी न रुकना चाहिए। ऐसे मनुष्यों के यज्ञ में विघ्न डालना या उनकी श्रद्धा को बिगाड़ना महा पाप है। ऐसे महात्माओं के यज्ञ से अनिष्ट फल की कभी उत्पत्ति न होगी।

ब्रह्मविषयक श्रद्धा विवस्वान् नामक सूर्य की लड़की है। वह अनेक तरह के गुणों को पैदा करनेवाली है, इसलिए उसका नाम प्रसवित्री है। वह पालन करती है इससे उसे सावित्री कहते हैं। बाहरी क्रिया से मालूम होनेवाली वाणी और मन श्रद्धा से ही प्रकट होते हैं। जब मनुष्य बातचीत करता है तब उसकी बातों से उसके मन का हाल मालूम हो जाता है कि

जिस विषय में वह बातचीत कर रहा है उस विषय में उस की कैसी श्रद्धा है। श्रद्धा के होने से ही धर्म होता है। बिना श्रद्धा के कोई काम ठीक नहीं होता।

भीष्मजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! जो अपने सच्चे उपदेशों से दूसरों को सच्चे मार्ग पर ले जाता है और जो जितेन्द्रिय है उसकी रक्षा श्रद्धा किया करती है। जो मनुष्य श्रद्धावान् होता है उसकी रक्षा वाणी और मन करते हैं। परन्तु जो मनुष्य श्रद्धा-रहित है उसकी रक्षा यज्ञ नहीं कर सकता। बात यह कि जिस समय मनुष्य मन्त्रों को बोलता है उस समय यदि कोई शब्द ठीक ठीक शुद्ध उच्चरित न हो, वर्णविपर्यय होता हो, वाक्य नष्ट होता हो, और देवताओं की आराधना करते समय चित्त व्यग्र या चलायमान होता हो, ठीक ठीक आराधना करने में न लगता हो तो उस समय उस मनुष्य की रक्षा करने-वाली श्रद्धा ही होती है। श्रद्धा के होने से मनुष्य के किये हुए काम का फल मिलने में कोई रुकावट नहीं हो सकती। श्रद्धा के विषय में ब्रह्मा ने एक बार एक गाथा कही थी; उसको ऐतिहा-सिक लोग प्राय: कहा करते हैं। वह गाथा इस तरह है:—

एक बार बहुत से देवता एक जगह इकट्ठे हुए। उन्होंने परस्पर विचार करके कहा कि हम यज्ञकर्म में, ऊपर से पवित्र रहनेवाले अश्रद्धालु मनुष्य के तथा अपवित्र रहनेवाले श्रद्धावान् मनुष्य के—दोनों के धन को एकसा समझते हैं। इसी तरह जो मनुष्य पढ़ा लिखा भी है पर कंजूस हो और दूसरा श्रद्धालु हो पर ब्याज लेकर जीविका करता हो तो दोनों तरह के मनुष्यों के

अन्न को हम एकसा समझते हैं। उनमें किसी तरह का फ़र्क़ नहीं समझते।

उन देवता (विद्वानों) में जो प्रधान देवता प्रजापति थे उन्होंने कहा कि आप लोगों ने इस समय जो न्याय किया, वह ठीक नहीं हुआ। आपने विषम को सम ठहराया। चाहिए यह था कि जो मनुष्य श्रद्धावान् है उसका अन्न श्रद्धा से पवित्र है। और श्रद्धारहित मनुष्य का अन्न बुरा है। वह ग्रहण करने के योग्य नहीं तथा हानिकारक है। इसीलिए श्रद्धावान् मनुष्य चाहे ब्याज से जीविका करता हो तो भी उसका अन्न ग्रहण करने योग्य है। पर श्रद्धारहित वेदपाठी का भी अन्न ग्रहण करने योग्य नहीं। जिस मनुष्य में श्रद्धा नहीं वह अग्नि, वायु आदि देवताओं को यज्ञ के द्वारा तृप्त करने का अधिकारी नहीं। वह बिना श्रद्धा के देवताओं को कभी प्रसन्न नहीं कर सकता। धर्म को जाननेवाले विद्वान् जानते, मानते और कहा करते हैं कि श्रद्धारहित मनुष्य का अन्न कभी न खाना चाहिए। अश्रद्धा पाप-रूपिणी है और श्रद्धा मनुष्य को पापों से छुड़ानेवाली है। जिस तरह सांप अपनी पुरानी कंचुली छोड़ कर सुख पाता है उसी तरह श्रद्धावान् मनुष्य पापों को छोड़ कर सुख पाता है।

मनुष्य को चाहिए कि वह श्रद्धासहित निवृत्तिमार्ग का सहारा ले। श्रद्धा सब से बड़ी और कल्याण करने वाली है। जिसके राग आदि दोष छूट गये हैं वह श्रद्धावान् और पवित्र हो सकता है। वही मुक्ति-सुख को पा सकता है।

जिस मनुष्य में श्रद्धा है, उसे तप करने, शीलता दिखाने,

आचरण सुधारने, शरीर को अच्छा बनाने आदि कामों से क्या मतलब । क्योंकि सच्ची श्रद्धा के होने से उसमें अनेक गुण स्वयं आजाते हैं । जीवात्मा स्वभाव से श्रद्धास्वरूप है इसलिए उसमें जिस दरजे की श्रद्धा होगी उसी दरजे का वह श्रद्धालु कहावेगा ।

ऊपर जिस तरह धर्म का वर्णन किया गया है वह धर्म और अर्थ को समझने वाले साधु महात्माओं और विद्वानों का बतलाया हुआ है । धर्मदर्शन नामक मुनि से हम लोगों ने इस प्रकार धर्म का लक्षण मालूम किया है । हे जाजले ! तुम पहले श्रद्धावान् बनो । फिर तुमको परम सुख (मुक्ति) मिलेगा । जो वेदवाक्य में श्रद्धा करता है और वेदार्थ अनुष्ठान करने में श्रद्धावान् होता है वह धर्मात्मा कहलाता है । जो मनुष्य कर्त्तव्य-मार्ग में, धर्म-मार्ग में निवास करता है वह गौरवयुक्त होता है, वही सब से बड़ा है ।

भीष्मजी ने कहा कि हे राजन् ! इसके बाद बुद्धिमान् तुलाधार और जाजलि मुनि थोड़े ही समय में सुरलोक को चले गये और वहाँ अपने अपने कर्मों से मुक्तिसुख पाकर आनन्द-पूर्वक विहार करने लगे । तुलाधार ने उस समय अनेक तरह से धर्म का वर्णन किया था । वह अच्छी तरह धर्म के मर्म को समझता था । यहाँ उसके कथन का सारांश वर्णन किया गया है ।

हे कौन्तेय ! महात्मा जाजलि ने तुलाधार के कहे हुए सनातन धर्म को अच्छी तरह सुना और उसे धारण कर के शान्तिमार्ग का सहारा लिया । तुलाधार ने धर्म का ऐसा अच्छा वर्णन किया

जो सब कामनाओं को पूरा करने वाला, शान्तिमार्ग को दिखलाने वाला और सर्वसम्मत था। उसको सुन कर जाजलि में धर्मविषयक श्रद्धा करने की जो कमी थी, वह ठीक हो गई। जाजलि भी धर्म-विषय को अच्छी तरह समझता था पर उसे अपने धर्म का घमंड हो गया था। वह तुलाधार के कथन से समझ गया और अन्त में उसने मुक्तिसुख को प्राप्त किया।

—:o:—